IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# प्राचीन भारत में राजधर्म की संकल्पना का संवैधानिक परिपेक्ष्य में अध्ययन

**डॉ. संजय एन. कानिंदे**
सहयोगी अध्यापक
वसंतराव नाईक शासकीय कला व
समाज विज्ञान संस्था नागपुर

प्राचीन भारत में षराजधर्मष ;राजकीय धर्मद्ध की अवधारणाए संविधानिक परिप्रेक्ष्य मेंए राजा के कर्तव्योंए शासन के सिद्धांतों और समाज के संगठन के बारे में थीए जो धर्म और न्याय पर आधारित थीए और जिसका उद्देश्य प्रजा का कल्याण और राज्य की सुरक्षा करना था प्राचीन भारत में धर्म और राजनीति के बीच गहरा संबंध थाए राजा का धर्म ;राजधर्मद्ध उसकी जिम्मेदारी थी कि वह धर्म की रक्षा करे और प्रजा को न्याय प्रदान करेए आधुनिक भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्ष हैए जिसका अर्थ है कि राज्य किसी भी धर्म को बढ़ावा नहीं देता है और सभी धर्मों के नागरिकों के साथ समान व्यवहार करता हैएसंविधान सभी नागरिकों को समान अधिकार और अवसर प्रदान करता हैए चाहे उनका धर्मए जातिए लिंगए या कोई अन्य आधार कुछ भी हो संविधान न्याय और समानता पर आधारित हैए और सभी नागरिकों को न्याय प्राप्त करने का अधिकार हैएप्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राजधर्म मुख्य रूप से राजा के अपने प्रजा के प्रति कर्तव्यों और उसकी प्रशासनिक गतिविधियों से संबंधित था। राजधर्म के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि राजधर्म के पीछे मूल भावना लोगों की शांति और समृद्धि सुनिश्चित करना था और ऐसा करते समय राज्य से निष्पक्षता बनाए रखने की भी अपेक्षा की जाती थी। यह देखा गया है कि प्राचीन भारतीय राज्य लोगों के प्रति असीम स्तर तक दयालु और सहायक था। वास्तव मेंए प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में योगक्षेम में जो घोषित किया गया थाए उससे बड़ा राज्य का कोई लक्ष्य और कर्तव्य नहीं हो सकता। अतीत में प्रतिपादित राजधर्म आज भी मान्य हैय राजनीति में एक अच्छेए व्यवस्थितए शांतिपूर्ण और समृद्ध सामूहिक जीवन का प्रकाशस्तंभ। आज भी राजनीतिक जीवन के स्वर और मानदंडों में सभी परिवर्तनों के बावजूदए राजधर्म के मूल सिद्धांत अतीत की तरह ही बने हुए हालांकि आधुनिक भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्ष हैए लेकिन प्राचीन राजधर्म की अवधारणा में निहित न्यायए धर्म और प्रजा के कल्याण के सिद्धांत आज भी भारतीय समाज में महत्वपूर्ण हैंए आजए राजधर्म का अर्थ है कि शासक धर्मनिरपेक्षताए समानता और न्याय के सिद्धांतों के आधार पर शासन करेए और प्रजा के कल्याण के लिए काम करेएप्राचीन भारत में राजधर्म की अवधारणा संविधानिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण थीए क्योंकि यह राजा के कर्तव्योंए शासन के सिद्धांतों और समाज के संगठन के बारे में थीए आधुनिक भारत मेंए संविधान धर्मनिरपेक्ष हैए लेकिन प्राचीन राजधर्म के सिद्धांतों में निहित न्यायए धर्म और प्रजा के कल्याण के सिद्धांत आज भी भारतीय समाज में महत्वपूर्ण हैंए

प्राचीन भारतीय राजकीय व्यवस्था में शासक की वैधता आवश्यक मानी जाती थी। यह वैधता जनता की सहमति तथा समाज के उच्च वर्गों द्वारा निर्णयों की स्वीकृति पर आधारित थी। वैदीक साहित्य में भी जनता के द्वारा शासक के स्वीकृति को स्वीकृत किया गया है। राजाव्यवस्था अपनी वैधता अनुवांशिकता अथवा परंम्परागत सत्ता अधिष्ठान से प्राप्त नहीं करती थी अपितु राजकीय आज्ञाओं, नीतियों, नियमों, आदेशों तथा क्रियाकलापों को सामान्य जन द्वारा प्रदत्त स्वीकृति से प्राप्त करती थी।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधाराओं में विधि के शासन को महत्व प्रदान किया गया है। विधि के सम्यक प्रयोग तथा उसके उल्लंघन पर दंड निर्धारण राज व्यवस्था का प्रमुख दायित्व कहा गया है। साथ ही विधि के अनुपालन में भेदभाव की अनुपस्थिति, सभी प्रजाजनों को राज निर्णयों के अनुपालन का निर्देश तथा सब प्रकार से राजकीय निर्देशों की स्वीकार्यता आदि विधि के शासन की सर्वत्र उपस्थिति के प्रमाण हैं।

वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण में राजा के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि, राजामें इंद्रियों का संयम, मन का निग्रह, क्षमा, धर्म, धैर्य, पराक्रम, सत्य, अपराधियों को दण्ड देना आदि गुणों को आवश्यक माना गया है। इसके अलावा राजाओं को स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए। नीति और विनय, दण्ड और अनुग्रह इनका अविवेकपूर्ण उपयोग करना उनके लिए उचित नहीं। राजा को अनावश्यक हिंसा से बचना चाहिए।[1] राजनीति की भारतीय परंपरा में राजा के चयन, नियुक्ति, अभिषेक, शपथ ग्रहण आदि का विस्तृत वर्णन आया है। राजा के अतिरिक्त अमात्यों, मंत्रियों तथा सचिवों की नियुक्ति, योग्यताओं, निर्योग्यताओं, पदानुक्रम, दायित्वों तथा कार्यक्षेत्रो के भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा वृहत्तर विवरण प्राचीन भारतीय चिंतन में प्राप्त होते हैं।[2]

प्राचीन भारतीय राज्य परंपरा में लोकतंत्र शब्द का प्रयोग भी अनेकानेक स्थानों पर उपलब्ध है। राज धर्म को प्रजा रंजन की अनिवार्यता से सम्बद्ध किया गया है। लोकतांत्रिक मूल्यों के संरक्षण का दायित्व धर्म की वरेण्यता के रूप में उपस्थित है। सबका कल्याण, सबका हित, सबका विकास, सबकी शांति की वृहत्तम कल्पना भारतीय राजनीतिक चिंतन के मूल में विद्यमान है।[3]

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन राजनीतिक एवां प्रशासनिक व्यवस्था को कभी भी स्वेच्छाचारी अथवा अनियंत्रित नहीं होने देता है। दोनों महाकाव्यों में प्रत्येक स्तर पर संपूर्ण शासन को उत्तरदायी बनाए जाने को सुनिश्चित किया गया है। राजा तथा समस्त राज्य अधिकारियों पर धर्म की, नैतिकता की, लोकाचार की, परंपरा की, समाज की, विधियों की मर्यादा आदि का नियंत्रण विद्यमान है। इसके साथ ही राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न संस्थापरक उपकरणों का भी विस्तृत विवरणात्मक प्रावधान उपलब्ध है। वैदिक काल के साहित्य में विद्यमान सभा और समिति के विषय में विस्तृत उल्लेख विद्यमान है। उनके निर्णयों, प्रक्रियाओं, अधिकारों, कार्य क्षेत्रों, तथा सीमाओं का भी व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है। मंत्री परिषद तथा सचिव आदि का भी स्तरीकृत पदानुक्रम वर्णित किया गया है। अतः शासन कभी भी एक व्यक्ति केंद्रित नहीं था।[4]

राज्य, राजनीति, राजधर्म, दण्डनीति, शासन, प्रशासन, नीति, निर्णय, व्यवहार, विधि, आदि के विषय में भारतीय ज्ञान परंपरा में एक सुविचारित सुस्पष्ट तथा सुसंगठित श्रेणीबद्धता भी विद्यमान है। सप्तांग सिद्धांत इस तथ्य का प्रमाण है कि राज्य के सातों अंगों की पृथक सत्ता, अस्मिता और स्थान है। वे परस्पर सहयोगी तथा पूरक हैं। परंतु कोई भी किसी के भी अधीन नहीं है। वे परस्पर निर्भर हैं परंतु परस्पर मुखापेक्षी नहीं हैं। वे परस्पर सहकर्मी हैं परंतु परस्पर प्रतिस्पर्धी नहीं हैं। वे एक समग्र का अंग हैं। एक सावयव का अंश हैं। भारतीय राजधर्म की परंपरा शासन को पारदर्शी तथा सामूहिक उत्तरदायित्व संपन्न भी बनाती है। इसीलिए निर्णयों को एकांत में अथवा अकेले लिए जाने का स्पष्ट निषेध किया गया है। निर्णय की सामूहिकता की अनिवार्यता ही पारदर्शिता का सशक्त प्रमाण है। योग्य, विशेषज्ञ, विद्वान, कुशल तथा पारंगत व्यक्तियों को तत्संबंधी निर्णय प्रक्रिया का अंग बनाया जाना भी प्रावधानित है।[5]

वाल्मीकि रामायण का राम राज्य भारत की श्रेष्ठ राज्य की सर्वोत्कृष्ट परिकल्पना है। राम के गुणों के वर्णन में सर्वोत्तम राजा की विशिष्टताएं दृष्टिगोचर होती हैं। राम आत्मसंयमी, महापराक्रमी, तेजस्वी, धैर्यवान, आत्मनियंत्रित, बुद्धिमान, नीतिज्ञ, वक्तृत्व–संपन्न, शत्रुहन्ता, धर्मज्ञ, सत्यानुरागी, यशस्वी, ज्ञान संपन्न, पवित्र योगी, प्रजा के हित में सदैव संलग्न, वेद वेदांग में पारंगत, तत्वज्ञानी, धनुर्वेद में निष्ठित, स्वधर्म के रक्षक, स्वजनों के रक्षण, प्रतापी, आजानुबाहु, शुभलक्षण युक्त, समुद्र के समान गांभीर्ययुक्त, हिमवान की भांति धैर्यवान, त्यागी, सत्यवादी, धर्मनिष्ठ तथा सुदर्शन आकृति वाले हैं।[6] वाल्मीकि रामायण श्रेष्ठ राजा में इन्हीं

चारित्रिक गुणों की अपेक्षा करती है। वहां राजा से यह भी अपेक्षा की गई है कि वह प्रजा का रक्षण करे, दस्युओं का दमन करे तथा सज्जनों को सुरक्षा प्रदान करे।

महाभारत में अनेक स्थानों पर यह उल्लेख आता है कि राजा का यह परम दायित्व है कि वह चारों आश्रमों को अपने – अपने धर्मों में लगाए रखे।[7] राजा से यह अपेक्षा की गई है कि वह प्रजा का पालन इस प्रकार करे जैसे कि पिता अपनी संतानों का करता है। एक श्रेष्ठ राजा के राज्य में प्रजा इस प्रकार भय मुक्त जीवन यापन कर सके जिस प्रकार की अपने पिता के घर में उसकी संतान निर्भय विचरण करती है।[8] महाभारत कहता है कि संपूर्ण प्रजा में पिता का भाव रखने वाले राजा को न्याय करते समय प्रत्येक दशा में निष्पक्ष होना चाहिए। न्याय व्यवहार में राजा का निष्पक्ष होना अनिवार्य है।[9] प्राचीन संस्कृत भारतीय साहित्य में अनेक स्थानों पर ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं जहां मनुष्य के कल्याण के लिए और प्रजा के हित के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए आतुर है।

इनका एक प्रमुख कारण है कि राजाओं का एकमात्र धर्म प्रजारंजन माना गया है।[10] यह प्रजारंजन वस्तुतः लोक कल्याण का ही विचार है। इस विचार की स्थापना के लिए राजा को समाज में अनुशासन की व्यवस्था स्थापितकरनी होगी। विवादों का शमन करना होगा। नागरिकों की रक्षा के बारे में चिंतित रहना होगा।[11]

महाभारत में देवऋषि नारद युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न करते हैं और उनमें वे लोककल्याण के प्रति राजा की सहज सजगता और निष्ठा को रेखांकित करते हैं। युधिष्ठिर से अनाथों, वृद्धों, बालकों, स्त्रियों, रोगियों आदि के बारे में विशिष्ट व्यवस्थाएं करने का सुझाव देते हैं। महर्षिनारद मार्गों, जलाशयों, उद्यानों, नदियों, और वृक्षों के बारे में राजव्यवस्था से अपनी अपेक्षाएं संसुचित करते हैं।[12] देवऋषि नारद गुरुकुलों, विद्वानों, तपस्वियों और अरण्य वासियों के बारे में राजा से अधिक ध्यान देने का आग्रह करते हैं। वे न्याय और व्यवहार की प्रक्रियाओं में किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध करते हैं।[13] वे कठिनाई में और किसी आपदा में फंसे हुए नागरिकों के लिए राजा को सहृदय, संवेदनशील और उदार रहने का आग्रह करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में राजा पदारोहण से पूर्व यह शपथ लेता है कि वह अपने मन, वचन, कर्म से आजीवन प्रजा के कल्याण में ही संलिप्त रहेगा।[14]

महाभारत में यह व्यवस्था की गई है कि राजा अभिषेक से पूर्व यह शपथ ले कि वह आज के बाद प्रजा जनों के कल्याण में ही लगा रहेगा और यदि वह अपने इस निर्धारित धर्म से च्युत होगा तो उसे इस पद पर रहने का कोई अधिकार नहीं होगा।[15] राजाओं को राज्याभिषेक के समय यह उद्घोष करना था कि अब मुझे कोई दंडित नहीं करेगा अपितु मैं राजधर्म रूपी धर्म को धारण करते हुए अन्य सभी के दण्ड का निर्धारण कर सकूंगा। परंतु उसी समय राज पुरोहित पलाश दण्ड के प्रहार से राजा को सतर्क करता था कि तुम अदण्ड्य नहीं हो अपितु धर्म के नियंत्रण में हो। तुम्हारे आचरण को धर्म मर्यादित करेगा और तुम्हारा धर्म राज धर्म के रूप में अधिकार नहीं वरन् प्रजारंजन का दायित्व है।[16]

किसी भी महत्वपूर्ण निर्णय से पूर्व विद्वानों, पुरोहितों तथा मंत्रियों से परामर्श करने की अनिवार्यता राजा को स्वेच्छाचारी होने से रोकती है और उसके कार्यों को विधिसम्मत सम्मान प्रदान करती है। महाभारत, मनुस्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अत्रि संहिता, याज्ञवलक्य स्मृति, शुक्रनीति आदि ग्रंथों में राजा के दायित्वों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है जो जीवन के प्रत्येक आयाम को स्पर्श कराती है।

भारतीय राजनीतिक परंपरा में राजधर्म का केंद्र राजा को माना गया है। राजा ही शासन की संपूर्ण व्यवस्था का कर्णधार है। वेद में ऋषि राजा से यह आग्रह करता है कि यह तुम्हारा राष्ट्र है, यह तुम्हें अन्नोत्पादन, समाज कल्याण और रक्षा हेतु प्रदान किया जा रहा है। तुम शुभ करो और नियम पूर्वक इस राजत्व को धारण करो।[17]

प्राचीन भारतीय राजनीतिक साहित्य में राजधर्म के बारे में सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन किया गया है। जिसमें प्रजा–हितैषी राजा, शासन की सुरक्षा, उन्नति, सुरक्षितता, स्थिरता, प्रजा कल्याण हेतु नीतियों का निर्माण,

नियोजन एवं कार्यान्वयन में जिन पद्धतियों का अनुसरण करता है, उसी को राजधर्म कहा गया है। प्राचीन भारतीय चिंतन में राजधर्म जीवन का उच्च आदर्श है जिसमें सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक पक्ष सन्निहित होता है। वास्तव में राजधर्म का आशय राजा एवं राजव्यवस्था से है। धर्म को कर्तव्य के अर्थ में वर्णित किया गया है। भारतीय मान्यताओं के अनुसार जिसमें धर्म विचरता है वही राजा है, क्योंकि राजा धर्म का पालन करने तथा प्रजा से धर्म का पालन कराने के लिए ही होता है।[18]

राजधर्म के आधार पर राजा, राजा के अधिकार एवं कर्तव्य, प्रशासनिक, न्यायिक, विधायी एवं युद्धनीति संबंधी विचारों का विस्तार से वर्णन किया गया है। राज्य के सर्वांगीण विकास का एकमात्र मंत्र ''राजधर्म'' ही है जिसे सर्व कल्याणकारी कहा गया है। राजधर्म से न केवल प्रजा कर्तव्यनिष्ठ होती है बल्कि राजधर्म प्रजा के कष्टों का निवारण करके उनके जीवन को परमगति प्रदान कर उन्नत भी करता है।[19] राजधर्म को क्षत्रिय धर्म का विशेष रूप माना गया है क्योंकि क्षत्रिय ही राज्य में शासन किया करते थे। क्षत्रियों का सामान्य धर्म पालन भी राजधर्म पर ही अवलंबित है। इसीलिए कहा गया है कि पुरातन राजधर्म जिसे क्षात्रधर्म भी कहते हैं, यदि लुप्त हो जाए तो आश्रमों के संपूर्ण धर्मों का ही लोप हो जाएगा।[20] चारों आश्रमों के धर्म एवं चारों वर्णों के धर्म राजा पर ही आश्रित होते हैं। एक राजा में ब्राह्मण की विद्वत्ता एवं स्वाध्याय, क्षत्रिय का पराक्रम, वैश्यों का अर्थोपार्जन, तथा शूद्रों का सेवाभाव जैसे आंतरिक गुणों को सन्निहित होना चाहिए।

राजा को चारों धर्मो की रक्षा करनी चाहिए। प्रजा को धर्मसंकरता से बचाना राजा का सनातन धर्म है।[21] भीष्म पितामह कहते हैं – राजा के धर्मो में सारे त्यागों का दर्शन होता है। संपूर्ण जीवलोक का अंतिम आश्रम राजधर्म मे ही है। राजधर्म अश्वों को वश में रखनेवाली बागडोर एवं गज को अधिकार करने वाले महावत (अंकुश) के सदृश्य है। राज्य रूपी शरीर के सभी अंग राजा के द्वारा ही गतिमान होते हैं। भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि राजा का धर्म प्रजाजनों का पालन करना है। सत्य की रक्षा और प्रजा का पालन ही राजाओं का सनातन धर्म है। राज्याभिलाषी राजाओं को अपनी प्रजा की रक्षा करने के अतिरिक्त कोई भी सनातन धर्म नहीं है। संपूर्ण राज्य की प्रजा की रक्षा करना ही राजधर्म का सार है। महाभारत काव्य में प्रजा की रक्षा को राजाका महान धर्म कहा गया है। समस्त प्राणियों के प्रति दया एवं रक्षा का परम भाव ही राजा का महान धर्म है। प्रजासमूह की धर्मपूर्वक एक दिन मात्र रक्षा करने से राजा दस हजार वर्षों तक स्वर्ग का फल भोग करता है।[22]

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राजा की भांति मंत्री परिषद की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया गया है। महाभारत में उल्लेख मिलता है कि बिना मंत्री की सहाय्यता के राजा तीन दिन भी राज्य का संचालन नहीं कर सकता। शुक्र के मत में राजा कितना भी योग्य और विद्वान क्यों ना हो, उसे राजकीय कार्य बिना मंत्रियों की सहाय्यता से नहीं करने चाहिए। अन्यथा वे कार्य राज्य को विपत्ति में डाल देंगे और राज्य स्वयं ही विनाश की ओर अग्रसरित होगा। इस प्रकार मंत्रिपरिषद राज कार्यो के लिए अत्यंत अनिवार्य है।

राजा का परम दायित्व है कि वह प्रजा के प्रति पुत्र के समान ही प्रेमवत व्यवहार करे किंतु न्याय के समय उसे स्नेहवश नागरिकों में पक्षपात कदापि नहीं करना चाहिए।[23] भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहा कि मंत्रियों की संख्या सैंतीस होनी चाहिए जिसमें चार ब्राह्मण, आठ क्षत्रिय, इक्कीस वैश्य, तीन शूद्र तथा एक सूत होना अनिवार्य था। ये सदस्य चारों वर्णो का प्रतिनिधित्व करते थे जिसके द्वारा राज्य की जनता के प्रत्येक वर्ण एवं वर्ग के हितों का संरक्षण हो सकता था। मनु ने सात एवं आठ संख्यावाले मंत्रिमंडल का समर्थन किया है। शुक्र नीति में आठ या दस मंत्रियों की नियुक्ति की व्यवस्था की है। कौटिल्य ने राजा के आवश्यकतानुसार मंत्रियों की नियुक्ति करने को कहा है। यद्यपि राजा को केवल तीन या चार मंत्रियों से मंत्रणा करनी चाहिए। इससे हमे राजनीतिक न्याय के प्रस्थापनाके सबुत मिलते है।

आचार्य कौटिल्य ने अपनी अर्थशास्त्र में राजतंत्र को श्रेष्ठ व्यवस्था स्वीकार करते हुए कहा है कि राजा को योग्य, सर्वगुण संपन्न, कर्तव्य परायण तथा परोपकारी होना चाहिए। इसी आधार पर राजा के गुणों एवं योग्यताओं का वर्णन किया गया है। कौटिल्य के अनुसार राजा को गुणवान एवं शीलवान होना चाहिए।

उनकी दृष्टि में केवल वही व्यक्ति राजा होना चाहिए जो राज्य के क्षेत्र का मूल निवासी हो, जो शास्त्रों के निर्देशों का पालन करता हो और कुलीन वंशी हो, बलवान हो तथा व्याधियों और व्यसनों से सर्वदा मुक्त हो।[25]

भारतीय संविधान के द्वारा सभि उच्च राजनितिक पदोपर आसिन व्यक्ती को भारत का नागरिक होना अनिवार्य किया है।

राजा का प्रधान कर्तव्य दण्ड का अनुपालन करना है। जो राजा दुष्टों के प्रति दण्ड धारण करता है तथा असहाय पर अनुग्रह करता है, वही राजा धर्मज्ञ कहलाता है। दण्ड समस्त राजा का शासक एवं रक्षक होता है, जो संपूर्ण प्राणियों के सो जाने पर भी जागता रहता है। इसलिए विद्वान पुरुष दण्ड को राजा का धर्म कहते हैं। दण्ड ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का रक्षक है। दण्ड के कारण ही ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यासी यह सभी दण्ड के भय से अपने–अपने मार्ग पर स्थिर रहते हैं।[27]

इस प्रकार दण्ड की महान शक्ति राजा में निहित है जो अपने दण्ड रूपी कर्तव्य के अन्तर्गत सम्यक न्यायोचित एवां पक्षपात रहित दण्ड को धर्मानुसार धारण करता है। राजा के न्यायिक कर्तव्य सर्वरक्षण एवां सर्व कल्याण की भावना से अभिप्रेरित है जो दुष्टों का दमन करके धर्म की प्रस्थापना करते हैं। आधुनिक समय में भि राजदंड को शक्ति के प्रति के रूप में स्विकार किया गया है।

वर्तमान में भारतीय संविधान राजधर्म को, विस्तृत परिभाषित करता है। शासन के प्रमुख अंगों के बारे में संविधान में विस्तृत वर्णन किया गया है। भारत के राष्ट्रपती, प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद के अधिकार एवं कार्यों को भली – भांति वर्णित किया गया है। भारतीय राज्य व्यवस्था मे संविधान सर्वोपरी है। संविधान का उल्लंघन करना अपराध माना गया है। शासन के प्रमुख तीन अंग कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका एक दूसरे से सम्बंधित होते हुए भी एक दूसरे पर नियंत्रण कर सकते हैं। विधायिका के द्वारा बनाया गया कानून का परिक्षण करने का अधिकार उच्चतम एवं उच्च न्यायालय को दिया गया है, जिसे हम आज्ञ न्यायिक परिक्षण के अधिकार के रूप में दखते है। संविधान का पालन करना ही शासकों के लिए राजधर्म है। संविधान के कानून का उल्लंघन करना राजद्रोह है। कानून का उल्लंघन करने वालों के लिए शिक्षा का प्रावधान है। भारत के सभी राजनीतिक पदो पर आसीन व्यक्ति को पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाई जाती है, जिसका पालन करना अनिवार्य है। संविधान की रक्षा करना और उल्लंघन करनेवालों को दंडित करना ही राजधर्म है। गुजरात में जब कानून व्यवस्था बिगड़ गई थी तब तत्कालीन राज्य सरकार को प्रधानमंत्री वाजपेयीजी ने राज्य शासकों को राजधर्म का पालन करने की हिदायत दी एवं तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को राजधर्म का पालन करने को कहा। भारत का संविधान व्यक्ति व्यक्ति में भेद नहीं करता, कानून के तहत सभी नागरिक समान व्यवहार के पात्र हैं, संविधानिक कानून जाति, धर्म, भाषा, संप्रदाय, प्रदेश इत्यादि आधार पर में कोई भेदभाव नही करता। शासकों का दायित्व है कि कानून का पालन जनता के द्वारा कड़ाई से करवाना है। बिगड़ी हुई कानून व्यवस्था सरकार को संकट में डाल सकती है। ऐसे समय पर राज्य मे आपातकाल लागू किया जा सकता है। इसलिए संविधान का पालन कराना ही सरकारों का एवं शासकों का राजधर्म है।

प्राचीन समय में शास्त्रों का पालन, वेदों का पालन, धर्म ग्रंथो का पालन, आश्रम धर्म का पालन करना राजधर्म कहलाता है। वर्तमान में संविधान का पालन ही राजधर्म है। यह पंथनिरपेक्ष राजधर्म है जिसका पालन सभी सरकारों का उत्तरदायित्व होता है। यह राजधर्म सभी धर्म ग्रंथो से परे है।

**संदर्भ ग्रंथ :–**

1) शुक्ल यजुर्वेद, 22 (22)

साम दानं क्षमा धर्मः

सत्यं धृति पराक्रमौ ।

पार्थिवानां गुणा राजन्

दण्डश्चापकारिषु ।।

2) वाल्मीकि रामायण, 2/100/15–6, 24–6/

3) लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु। विदूरनीति 3(58)

4) पौरकार्याणि यो राजा न करोति दिने दिने

संवृत्ते नरके घोरे पतितो नात्र संशयः ।।

–वाल्मीकि रामायण

5) संजीव शर्मा, चंचल नैन – प्राचीन भारतीय राजनीति, राहुल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ, 2023, पेज नं. 9 ते 12

6) रक्षितव्या प्रजा राझा रक्षितव्या द्विजातयः।

दस्यवश्च निहन्तव्या पारिपाल्याश्च साधवः।।

–वाल्मीकि रामायण 5/100/33

7) चतुर्वर्णाश्रमोलोको राजा दण्डे न पालितः।

स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेपुवर्त्मसु।।

–कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1/4/19

8) पुत्राः इव पितुर्गे हे विषचे यस्य मानवाः।

निर्भयाः विचरिष्यन्ति सराजा राजसत्तः।

–महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 57, श्लोक – 33

9) यथा पुत्रास्तथा पौत्रा इष्ट व्यास्ते न संशयः।

भक्तिश्चौया न कर्तव्या व्यवहारे प्रदर्शिते।।

–महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 57 श्लोक – द्वितीय

10) लोकरत्रजन मात्रेव राज्ञाधर्मः सनातनः।

सत्यस्यरक्षंणं चौव व्यवहारस्य चार्जवम्।।

–महाभारत, शान्ति पर्व अध्याय 57, श्लोक द्वितीय.

11) नियमयसि कुमार्ग प्रस्थितानान्तदण्ड

प्रशमयसि विषादं कल्प से रक्षणाय ।

–अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक– पंचम, श्लोक – 8

12) स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोक हेतोः

प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवं विधैव।

–अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक पंचम, श्लोक –7

13) श्रोतुं चौव न्यसेद् राजा प्राज्ञाव सर्वार्थदर्शिनः।

व्यवहारेषु सततं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम्।।

महाभारत शान्ती पर्व, अध्याय– 69, श्लोक –28

14) संजिव शर्मा / चंचल नैन – प्राचीन भारतीय राजनीति, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2023, पृ. 31

15) युद्धाप्रियाश्च शरणागत वत्सलाश्च

दीनेषु पक्षपातेता : कृतसाहसाश्च ।

एवं विधप्रतिभयाकृतिचेष्टितानां

दण्डः यथार्थमिह धारयितुं समर्थाः ।।

–भास, मध्यम व्यायोग, श्लोक–10

16) संजीव कुमार शर्मा / चंचल नै – प्राचीन भारतीय राजनीति, पृ. 32.

17) एते भृत्याः स्वनि कर्माणिहित्वा

स्नेहाद् रामे जातवाष्पा कुलाक्षः।

–भास, प्रतिभानाटकम, अंक–2 श्लोक–13

18) संजीव शर्मा, चंचल नैन – प्राचीन भारतीय राजनीती, पृ.41

19) कित्ता, पृ.42.

20) कित्ता, प्र. 42

21) चातुर्वर्ण्यस्य धर्माश्च रक्षितव्या महीक्षिता ।

धर्म संकररक्षा च राज्ञां धर्म सनातनः।।

–महाभारत, शान्तिपर्व, 57/28

22) यदरुना कुरुते धर्म प्रजा धर्मेण पालयन् । दशवर्षेसहस्त्राणि तस्य भुक्ते फलं दिवि ।।

–महाभारत, शान्तिपर्व 71/29

23) यथा पुत्रास्तथा पौत्राः द्रष्टव्यास्ते न संशयः।

भक्तिश्चैषां न कर्तव्या व्यवहारे प्रदर्शिते ।।

–महाभारत, शान्तिपर्व, 69/27

24) संजीव कुमार शर्मा/चंचल नैन – प्राचीन भारतीय राज नीति, पृ.86

25) कित्ता पृ. 92

26) दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्बधाः।।

–महाभारत, शान्तीपर्व, 15/2

27) ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः।

दण्ड स्थैव भयादेते मनुष्याः वर्तमनि स्यिता :।।

–महाभारत, शान्तीपर्व,15/13